E-Learning material prepared by Dr. Dhananjay Vasudeo Dwivedi, Assistant Professor, Department of Sanskrit, Dr. Shyama Prasad Mukherjee University, Ranchi

वेणीसंहार में रसनिर्धारण

डा० धनञ्जय वासुदेव द्विवेदी

सहायक प्रोफेसर, संस्कृत विभाग,

डा० श्यामा प्रसाद मुखर्जी विश्वविद्यालय, राँची

भारतीय नाट्यशास्त्र में रस का विशिष्ट स्थान है। यह रस ब्रह्मास्वाद-सहोदर माना गया है, जो न ज्ञाप्य है, न कार्य है, न नित्य है, न भावी है, न वर्तमान है, न परोक्ष है, न उत्पाद्य है, न वाच्य है, अपितु यह स्वयं प्रकाशित होने वाला, अखण्ड और अलौकिक है।

स्थायी भावों की अनेकता के कारण रस भी अनेक हैं। इन विभिन्न रसों में से कोई एक रस ही किसी काव्य या नाटक में मुख्य रस होता है और अन्य रस उस मुख्य रस के सहायक होकर आते हैं। प्रायः सभी काव्यशास्त्रकार शृङ्गार या वीर रस को ही प्रमुख रस के रूप में स्वीकार करते हैं। आचार्य धनञ्जयानुसार-

एको रसोऽङ्गी कर्तव्यो वीरः शृंगार एव वा।

अंगमन्ये रसाः सर्वे कार्यं निर्वहणेऽद्भुतम्।।

पुनश्च साहित्यदर्पणकार के अनुसार

एक एव भवेदङ्गी शृङ्गारो वीर एव वा।

अङ्गमन्ये रसाः सर्वे कार्यं निर्वहणेऽद्भुतम्।।

वेणीसंहार में वीर रस ही प्रधान रस है तथा वीभत्स, करुणारादि अन्य रस अङ्ग के रूप में आए हैं। इस नाटक में आद्यन्त वीर रस का प्रवाह अजस्र रूप से प्रवाहित है। भट्टनारायण कृत्रिम शैली को पसन्द करते हैं। समासबहुलता, क्लिष्टता और दुरुहता तथा गम्भीर ध्वनि वाले शब्दों का निर्वाह कर के ओज गुण की प्रचुर व्यञ्जना कराते हैं, जो वीर रस के लिए अनिवार्य ही नहीं अपितु उद्दीपक का भी कार्य करता है।

नाटककार ने इस नाटक में दीर्घसमासयुक्त गौड़ी रीति का प्रयोग किया है जो वीर रस के लिए सर्वथा अनुकूल है। बीभत्स, करुण और शृङ्गारादि अन्य रस वीर रस के अङ्ग हैं। प्रसाद गुण युक्त

वैदर्भी रीति और पांचाली रीति भी नाटक में उत्साह को बढ़ाते हैं। अतः इस नाटक का अङ्गी रस वीर रस ही है। वीर रस का स्थायी भाव उत्साह होता है।

इस 'उत्साह' स्थायी भाव वाले वीररस के अनेक भेद विद्वानों ने स्वीकार किये हैं। आचार्य भरत के अनुसार दानवीर, धर्मवीर और युद्धवीर के भेद से वीर तीन प्रकार का होता है।

दानवीरं कर्मवीरं युद्धवीरं तथैव च।

आचार्य धनञ्जय ने वीर रस की व्याख्या की तथा उन्होंने भी वीर रस के उपर्युक्त तीन भेद को ही स्वीकार किया है।

अब यहाँ प्रश्न उठता है कि वेणीसंहार का नायक किस प्रकार का वीर है और यहाँ इस नाटक में किस प्रकार के वीर रस के अङ्गित्व की स्थापना हुई है। नाटक का अवगाहन करने पर हम पाते हैं कि इसका नायक (भीम) न दानवीर है, न दयावीर है और न धर्मवीर ही। इस नाटक में भीम सदैव युद्ध के लिए दृढप्रतिज्ञ एवं उत्साहित दिखता है। अतः इसमें युद्धवीर की ही स्थापना हुई है। वीर रस में उत्साह स्थायी भाव होता है और नाटक में भी आद्यन्त युद्धवीर के वल से प्रतिपक्षी कौरवों की पराजय के प्रति उत्साह दृष्टिगोचर होता है। नाटक का प्रधान पात्र भीम अहर्निश अपने बाहुबल के द्वारा द्रौपदी के अपमान का बदला लेने के लिए चेष्टमान दीख पड़ता है ।

पाण्डवों के विनाश के लिये दुर्योधन द्वारा लाक्षागृह में आग लगाना, विषमिश्रित भोजन कराना, कपट, द्यूत द्वारा राज्य हड़प लेना, भरी सभा में द्रौपदी के केश एवं वस्त्र खींचकर उसे अपमानित करना आदि कई ऐसी बाते हैं जिनके स्मरण मात्र से उसका वीर हृदय सर्वदा उत्तेजित रहता है। कौरवों द्वारा किये गये अपकारों का प्रतिशोध लेने के लिये वह मर्यादा और शिष्टाचार की अवहेलना करने के लिये भी तत्पर हो जाता है।

जब उसे पता चलता है कि श्रीकृष्ण के माध्यम से युधिष्ठिर कौरवों से सन्धि करने के लिए इच्छुक हैं तो अपने पूज्य अग्रज युधिष्ठिर के प्रति भी आक्रोश व्यक्त करने में वह अपने को रोक नहीं पाता है।

उसकी मान्यता है कि दुष्ट शत्रुओं के साथ शान्ति की बात करना नपुंसकता का परिचायक है। प्रतिशोध की आग में जलते हुए भीम ने नाटकारम्भ में ही अपनी प्रतिज्ञा के द्वारा वीररस का बीज के

दिया है कि वह दुःशासन के वक्षस्थल से रक्त का पान करेगा और दुर्योधन की जङ्घाओं को तोड़कर उसके रुधिर से द्रौपदी की मुक्त वेणी का संहरण करेगा-

चञ्चभुजभ्रमितचण्डगदाऽभिघातसञ्चूर्णितोरुयुगलस्य सुयोधनस्य।

स्त्यानाऽवनद्धघनशोणितशोणपाणिरुत्तंसयिष्यति कचांस्तव देवि! भीमः।।

अपनी इन प्रतिज्ञाओं को पूरा करने के लिये भीम समस्त नाटक में युद्ध हेतु उत्साहित दिखता है, और अन्त तक वह पूरी कर ही लेता है। सर्वत्र भीम के वाक्यों में कहीं धृति, कहीं मति, कहीं गर्व, कहीं तर्क और कहीं स्मृति आदि वीर रस के सञ्चारी भावों का दर्शन होता है। भीम का प्रतिपक्षी कौरव भीम के लिये आलम्बन विभाव के रूप में नाटक में चित्रित हुआ है। कौरव द्वारा पाण्डवों के विनाश तथा अपमान के लिये किया गया प्रयत्न इत्यादि उद्दीपन विभाव हैं। पग-पग पर प्रतिपक्षियों के नाश के लिए भीम का प्रयत्न और वचन वीररस के ही उपचार है। अतः निश्चित रूप से वेणीसंहार नाटक में युद्धवीर नामक रस ही इसकी आत्मा के रूप में चित्रित हुआ है।

वीर रस के कुछ उदाहरणों को देकर हम इस नाटक में इसके अङ्गीत्व को और भी सहजता से स्पष्ट कर सकते हैं। भीम की वीरोचित गर्वोक्ति जिस किसी के दाम में भी महत् उत्तेजना की सृष्टि करने में सर्वथा समर्थ है-

मथ्नामि कौरवशतं समरे न कोपाद्

दुःशासनस्य रुधिरं न पिबाम्युरस्तः।

सञ्चूर्णयामि गदया न सुयोधनोरू

सन्धिं करोतु भवतां नृपतिः पणेन।।

उपर्युक्त श्लोक में दृढ़ प्रतिज्ञाधवान और साहसी भीम के मुख्य पात्र हैं जो क्रोध, स्फूर्ति और उत्साह की साक्षात् प्रतिमूर्ति हैं।

छठे अङ्क में सरोवर में छिपे हुए दुर्योधन को युद्ध के लिए ललकारते हुए भीमसेन अपने शौर्य से उसकी सुप्त वीरता को जगाने का प्रयास करते हैं-

जन्मेन्दोर्विमले कुले व्यपदिशस्यद्यापि धत्से गदां

मां दुःशासनकोष्णशोणितसुराक्षीवं रिपुं मन्यसे।

दर्पान्धो मधुकैटभद्विषि हरावप्युद्धतं चेष्टसे

मे त्रासान्नृपशो विहाय समरं पङ्केऽधुना।।

इस उदाहरण में दुर्योधन को उसके अतीत का स्मरण कराते हुए अन्त में क्षत्रियों के धर्म के विरुद्ध आचरण करने पर उसको धिक्कारने का भीमसेन का ऐसा अपूर्व ढंग है, जो किसी सामान्य जन में भी वीरता जागरित करने के योग्य सिद्ध हो सकता है।

दुर्योधन ने समर में अपनी क्षत्रियोचित वीरता का यद्यपि कोई चमत्कार नहीं दिखाया, तथापि उसकी वाणी में वीरता की झलक वर्तमान है। वह अपने को अतुलितबलराशि समझता है। अपनी अक्षौहिणी सेनाओं एवं द्रोण और कर्ण जैसे अजेय वीरों पर उसे बड़ा गर्व है। स्वयं को वह सिंह की तरह वीर समझता है।

इस प्रकार प्रस्तुत नाटक के अवगाहन से यह स्पष्ट हो जाता है कि वेणीसंहार में आदि से अन्त तक वीररस का प्रवाह अजस्र रूप में प्रवाहित है। ओज और तेज सर्वत्र व्याप्त है।